REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 7 | APRIL - 2019

''मलबे का मालिक'' कहानी में अभिव्यक्त विभाजन की त्रासदी

डॉ. अवधेश कुमार

''कहां तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए
कहां चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए
यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलों यहां से चलें उम्र भर के लिए
न हो कमीज़ तो पांओं से पेट ढक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।''[1]

दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल के ये चंद अशरार मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' पर एक सटीक टिप्पणी लगती हैं। महात्मा गांधी ने प्रत्येक नागरिक के सुख–समृद्धि का जो सपना देखा था। इन्होंने आजाद भारत में हिन्दू–मुस्लिम सह अस्तित्व का जो सपना देखा था। वह सपना मुहम्मद अली जिन्ना के 16 अगस्त 1946 के प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस से तेजी से टूटना शुरू हुआ। यह निश्चित नहीं है कि साम्प्रदायिकता की शुरुआत हिन्दुओं ने की या मुसलमानों ने। मुझे लगता है इसकी शुरुआत डलहौजी के 'डिवाइड एंड रूल' पॉलिसी से हुई। खैर चाहे जो हो लेकिन कांग्रेस की सत्तावादी राजनीति और जिन्ना के लगातार पाकिस्तान की मांग से देश विभाजन की कगार तक पहुंच गया और देश साम्प्रदायिकता की आग में जल पड़ा। हिन्दू मुसलमानों के बीच हुए इन भयंकर दंगों ने गनी मियां जैसे उदार मुसलमानों को भी भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने को विवश कर दिया। लोगों को उनके वतन की मिट्टी से अलग कर दिया और जो अलग नहीं हुए उनका हाल 'मलबे का मालिक' कहानी के चिरागदीन, जुबैदा, किश्वर और सुल्ताना की तरह हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश का विभाजन भी हुआ, और विभाजन के साथ साम्प्रदायिकता का ज्वालामुखी फूट पड़ा, जिसका लावा भारत और पाकिस्तान के कोने–कोने में फैल गया। 'मलबे का मालिक' कहानी इसी हिंसा की पृष्ठभूमि में ही विकसित होती है।

देश विभाजन ने सिद्ध कर दिया कि धर्मनिरपेक्ष शक्तियां हार गई और साम्प्रदायिक शक्तियों की विजय हुई। इसलिए मुझे यह कहने में कतई संकोच नहीं है कि साम्प्रदायिकता की नींव पर भारत का विभाजन हुआ। देश–विभाजन एक राजनीतिक घटना मात्र नहीं थी, बल्कि एक व्यापक मानवीय त्रासदी थी। राजनीतिशास्त्रियों ने विभाजन के पक्ष में चाहे जितने तर्क दिए हों और राजनेताओं की कूटनीति ने चाहे विभाजन को एक अनिवार्यता मानकर स्वीकार कर लिया हो, पर हिन्दी लेखकों ने इसे मानवीय त्रासदी के रूप में ही देखा। मानवता को कितने–कितने दुख झेलने पड़े, मानव मूल्यों का हनन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में कितने व्यापक स्तर पर हुआ। इसकी सच्ची तस्वीर 'मलबे का मालिक' जैसी कहानियों में मिलती है। यह विवरण देने का एक कारण तो यह बताना है कि देश विभाजन की त्रासदी कई दशकों तक हिन्दी लेखकों के मस्तिष्क पर छाई रही और वह लम्बे समय तक उनके रचना क्रम को प्रभावित करती रही। भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया है' भी विभाजन की त्रासदी को कहती है। इसमें भी साम्प्रदायिकता भरी हुई है। स्वयं प्रकाश की कहानी ''क्या

तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है?'' 1984 के सिख दंगों की साम्प्रदायिकता को बताती है।

देश विभाजन पर लिखे गए उपन्यासों की संख्या भी कम नहीं है। इस विषय पर पहला उपन्यास यशपाल का 'झूठा सच' है। इसके बाद भैरव प्रसाद गुप्त का ''सती मैया का चौरा'', भगवतीचरण वर्मा का 'वह फिर नहीं आई', सातवे दशक में अनेक उपन्यास छपे जिसमें 'आधा गांव' और 'ओंस की बूंद' (राही मासूम रज़ा') 'लौटे हुए मुसाफिर' (कमलेश्वर), तमस (भीष्म साहनी) और इंसान मर गया' (रामानन्द सागर) आदि हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि देश विभाजन और उससे उपजी यंत्रणा हिन्दी कहानीकारों और उपन्यासकारों का प्रिय विषय रहा है।

मोहन राकेश की कहानी मलबे का मालिक साम्प्रदायिकता की आड़ में अवसरवादिता की कहानी है। रक्खे पहलवान चिरागदीन दर्जी की हत्या इसलिए नहीं करता कि वह उसे पसन्द नहीं करता था बल्कि वह इसलिए करता है क्योंकि चिरागदीन के मकान पर रक्खे पहलवान की नजर लगी थी। वह चिरागदीन के मकान पर कब्जा करने के लिए न केवल चिरागदीन को मारता है बल्कि उसकी पत्नी जुबैदा और दोनों लड़कियां किश्वर और सुलताना को भी मार देता है। इतने बड़े कदम के लिए रक्खे पहलवान को बल अराजक साम्प्रदायिकता ने ही प्रदान किया था। हम कहानी में देखते हैं कि रक्खे पहलवान को कोई सजा नहीं होती है। वह रोज गली के बाहर की बायीं ओर की दुकान के तख्ते पर बैठता है। पीपल के पेड़ के नीचे बैठा चिलम पीता रहता है। रक्खे पहलवान को सजा साम्प्रदायिकता के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण नहीं होती। जब अधिकांश जगह मार–काट ही मची हुई थी तो सरकार किस–किस को सजा देती। यही कारण है कि इतने भयंकर अपराध कर देने के बावजूद उसे सजा नहीं होती।

अमृतसर के एक छोटी बांसी बाजार की यह कहानी एक गरीब मुस्लिम द्वारा एक सबल हिन्दू पर अत्यधिक विश्वास की दास्तान है। यह रक्षक के भक्षक बन जाने की कहानी है। रक्खे पहलवान को लोग उस बस्ती का रखवाला समझते थे। उसी के द्वारा चिरागदीन जैसे सीधे दर्जी की हत्या उस पर साम्प्रदायिकता का आरोप लगाकर कर दी जाती है। रक्खे पहलवान कहता है कि तुझे पाकिस्तान दे रहा हूं और चाकू मार देता है। कमलेश्वर सही कहते हैं– ''मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' विभाजन की त्रासदी और दंगे के कहर को सबसे अलग रूप में पेश करती है। जाहिर है कि आजादी के बाद के हिन्दुस्तानी समाज का एक बहुत बड़ा तबका आज भी उस दर्द से उबर नहीं पाया है और गाहे–बगाहे वह टीस बहस का उग्र रूप भी धारण कर लेती है। 'मलबे का मालिक' निःशेषवाद की कालातीत अभिव्यंजना है।''[2]

मलबे का मालिक कहानी की शुरुआत ही लाहौर से अमृतसर एक यात्री दल की वार्ता से होती है। वे आपस में बात करते हैं कि यहां पर मिसरी की दुकानें भी, यहां पर भठियारिन की भट्ठी थी, यह नमक मंडी देख लो यानि वे एक–एक चीज को पहचानने का प्रयास करते हैं। साम्प्रदायिकता ने वहां चीजों को काफी बदल दिया था। लोग मस्जिद को गुरूद्वारा बना दिए थे। ऐसी हालत में जब उन्हें अमृतसर के बांसी बाजार में एक मजिस्द दिखाई देती है तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है कि बलवाइयों ने इसको तोडकर गुरूद्वारा क्यों नहीं बना दिया। पाकिस्तानी टोली को लोग उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। कुछ तो मुसलमानों को देखकर आशंकित हो जाते थे, इससे समझा जा सकता है कि लोगों के दिलों में देश विभाजन के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों की टीस तब तक मौजूद ही थी। बांसी बाजार में जगज–जगह मलबे का ढेर भीषण दंगों में बलवाइयों द्वारा लगाई गई आग का प्रमाण है।

चिरागदीन की हत्या किसी घर के बुझते चिराग की कहानी है। चिरागदीन की हत्या से उस घर का चिराग बुझ गया। चिरागदीन की हत्या उसके मकान पर कब्जा करने के लिए की गई थी। रक्खे पहलवान पर यह गज़ल बहुत फिट बैठेगी–

''पेट के भूगोल में उलझा है आदमी
इस अहद में किसको फुरसत है पढ़े दिल की किताब
डाल पर मज़हब की पैहम खिल रहे दंगों के फूल
सभ्यता रजनीश के हम्माम में हैं बेनकाब।''[3]

गनी मियां अपना घर खोजने के क्रम में जब एक रोते बच्चे को चिज्जी देने के लिए बुलाता है तो एक

लड़की द्वारा बच्चे को उठा लिए जाना और यह कहना कि चुप रहो नहीं तो तुम्हें वह मुसलमान उठाकर ले जाएगा। यह विचार ही एक साम्प्रदायिक विचार है। ऐसा लगता है कि मुसलमानों के व्यक्तित्व का प्रयोग बालकों को डराने में किया जाता है। यह धारणा तो आज तक नहीं बदली है।

'मलबे का मालिक' सांप्रदायिक दंगों एवं देश विभाजन से बिछड़े एक ऐसे परिवार की कहानी है; जिन्हें नियति ने फिर कभी मिलने का अवसर ही नहीं दिया। यह अपने जमीन से टूटे गनी मियां की कहानी है। जो उस मकान, उस गली की खुशबू से फिर संबंध जोड़ने की कहानी है। यह कहानी एक बूढ़े के आंखों में बसे सपनों के मर जाने की कहानी है। यह कहानी आजादी के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों से प्रभावित लाखों लोगों का सच है। चिरागदीन के पूरे परिवार को तो रक्खे पहलवान समाप्त कर देता है। यह साम्प्रदायिकता नहीं तो और क्या है। साम्प्रदायिकता की चरम परिणति तो तब हो जाती है जब उस घर को कोई आग लगा देता है। यह अवसरवादिता का चरम नमूना है जिसमें यही लगता है कि हम किसी पीड़ित आदमी को और पीड़ित कैसे करें।

मकान के स्थान पर मलबा को देखकर गनी मियां को जो तकलीफ हुई। उसके लिए वे तैयार नहीं थे। गनी मियां इतने संवेदनशील और भावुक हो जाते हैं कि उन्हें उस मलबे की मिट्टी को भी छोड़कर जाने का मन नहीं करता। रक्खे पहलवान की तरफ गनी मियां बाहें फैलाकर जाते हैं। उन्हें मालूम ही नहीं रहता कि यही पहलवान जिसके रहते उन्हें किसी का डर नहीं रहता था। वही उनके परिवार का हत्यारा है। रक्खे पहलवान स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं छोड़ता है। इससे तो यही लगता है कि चाहे कोई दंगा हो या अन्य कोई समस्या। उसका असर सबसे ज्यादा स्त्रियों और अबोध बच्चों पर ही पड़ता है। जब गनी रक्खे पहलवान से बात करता है और उस पर विश्वास जताता है तो वह शर्म से परेशान हो जाता है। जब गनी यह कहता है कि– ''मेरे लिए चिराग नहीं, तो तुम लोग तो हो। मुझे आकर इतनी ही तसल्ली हुई कि उस जमाने की कोई तो यादगार है। मैंने तुमको देख लिया, तो चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम लोगों को सेहतमंद रखे।''[4] गनी मियां के इतना कहने पर रक्खे पानी–पानी हो जाता है। उस दिन भी वह गली के बाहर बाईं ओर की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। लेकिन उस दिन उसने लोगों को नन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे नहीं बताए बल्कि वह पन्द्रह साल पहले की गई वैष्णों देवी की यात्रा का विवरण सुनाता है। रक्खे में यह परिवर्तन प्रेमचंद के इस विश्वास के कारण होता है कि 'बुरा आदमी बिल्कुल बुरा नहीं होता उसके हृदय के किसी न किसी कोने में देवता अवश्य छिपा रहता है।' गनी मियां ने रक्खे पहलवान के अंदर के देवता को जगा दिया था। ''सामप्रदायिक समस्याओं के संदर्भ में कहानीकार ने एक और महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया है। गनी को गली में देखकर जो औरतें उससे डर रही थी, उनका डर उस समय समाप्त हो जाता है, जब वे रक्खे और गनी की तुलना करती हैं। अब वही गनी सबकी सहानुभूति का और रक्खे घृणा का पात्र है। रक्खे ने ही चिराग और उसके बीबी बच्चों को मारा है.... ये वही औरतें हैं जो थोड़ी देर पहले गनी को डर और शक की निगाहों से देख रही थीं, वास्तविकता से भिज्ञ होकर अब वे परिवर्तित हो चुकी हैं। सांप्रदायिकता की निःसारता इस बदले हुए मनोभाव में निहित है।''[5]

मलबे की चौखट का भुरभुराकर गिरना संबंधों में आए ढीलेपन का संकेत है। विभाजन से जुड़ने के बावजूद यह कहानी साम्प्रदायिकता, उसके दुष्परिणाम, राजनैतिक विडम्बना और उसके सामाजिक परिणामों के संदर्भ में व्यापक हो उठती है। पहले स्तर पर यह कहानी केवल रक्खे पहलवान और गनी मियां की न होकर विभाजन की विभीषिका से बचे उस मलबे की हो जाती है, जो हमारे सामने एक प्रश्न की तरह खड़ा है और जिसकी चौखट से सड़ी लकड़ी के रेशे झर रहे हैं। इस स्तर पर किस्सा मलबे का भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व उभरता है। जुबैदा, किश्वर और सुल्ताना का किस्सा मलबे के साथ दफन नहीं हो गया। यह हमारे समय में और मजबूत होता जा रहा है। अब तो रक्खे जैसे पहलवानों की रीढ़ की हड्डी में दर्द भी नहीं होता। डॉ. बच्चन सिंह 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास में कहते हैं कि ''मोहन राकेश की कहानियाँ त्रासद–तनाव की कहानियां हैं, उनका सारा साहित्य' तनाव और अन्तर्द्वन्द्वों से भरा पड़ा है। उनके पात्र नायक ऐसी परिस्थितियों में होते हैं, जो उन्हें टूटने के हद तक छोड़ जाते हैं। 'मलबे का मालिक' को ही लें। यह कहानी भारत विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों पर आधारित है। मलबा उन्माद और वहशीपन का प्रभावी प्रतीक है। अनेक स्मृति–बिंबों में उसका तनाव त्रासद हो उठता है।''[6]

'मलबे का मालिक' कहानी का शीर्षक बड़ा व्यंजक है। मलबा हम उसे कहते हैं जो किसी काम का ना

हो। कूड़ा–कचरा–मलबा एक दूसरे के पर्यायवाची लगते हैं। वह घर लो चिरागदीन का स्वर्ग था। वही दूसरों के लिए मलबा के रूप में है। साम्प्रदायिकता की आग में हम दूसरे के सपनों को जलाकर मलबा बना देते हैं। आखिर चिरागदीन–गनी मियां के सपनों को तोड़कर रक्खे पहलवान को क्या मिला। लेकिन बिडम्बना यह है कि रक्खा इस मलबे को अपनी जागीर समझता है। बाजार बांसी का एक कुत्ता उस मलबे को अपनी जागीर समझता है। वह मलबे पर बैठे रक्खे पहलवान का विरोध भौंककर करता है। लेकिन इस कहानी की बिडम्बना यह है कि चिरागदीन का पूरा मकान जलाकर राख कर दिया जाता है। उसके पूरे परिवार की हत्या कर दी जाती है। लेकिन वह विरोध नहीं कर पाता। उसकी हालत तो उस कुत्ते से भी गई गुजरी हो गई है। मलवा वास्तव में कुत्ते, बिल्लियों, कीड़े–मकोड़ों का विश्रामस्थल ही होता है। रक्खा पहलवान उस मलबे को खुद की जागीर समझता है। इसका मतलब मलबा रक्खे पहलवान का दिमाग ही है। खैर चाहे जो हो इस मलबे को अब हटना चाहिए क्योंकि यह एक साम्प्रदायिकता की निशानी है। विपिन चन्द्र कहते हैं– ''सांप्रदायिकता आज भारत के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यह भारतीय समाज के बिखराव का आरंभ है, कठिनाई से प्राप्त भारतीय जनता की एकता के लिए संकट है और बर्बरता के ताकतों के लिए खुली छूट है। अब यह कोई क्षेत्रीय संघटना नहीं है। यह एक देशव्यापी समस्या बन गई है। कभी यहां, कभी वहां हिंसक रूप में फूट पड़ती है और किसी न किसी रूप में यह सारे देश में फैलने लगी है।''[7]

'मलबे का मालिक' के कहानीकार मोहन राकेश ने अपनी इस कहानी में विभाजन के बाद की परिस्थितियों पर ध्यान इसलिए दिया क्योंकि विभाजन से उपजी साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम आजादी के कई वर्षों बाद तक महसूस किए गए। साम्प्रदायिक दंगे आज ज्यादा ही बढ़ गए हैं। 1984 के सिख दंगों से लेकर, गोधरा, कंधमाल, बाबरी मजिस्द विध्वंस और उत्तर प्रदेश के मऊ में हुए साम्प्रदायिक दंगे इसी कड़ी में हैं। इसलिए मलबे का मालिक कहानी की साम्प्रदायिकता आज भी प्रासंगिक लगती है।

मलबे का मालिक कहानी साम्प्रदायिकता की आड़ में उपजे अवसरवादिता की कहानी है। चिरागदीन की हत्या के मूल में हिन्दू–मुस्लिम घृणा है ही नहीं। इसके मूल में रक्खा पहलवान द्वारा चिरागदीन के घर पर कब्जा करने की लालसा। चिरागदीन तो रक्खा पहलवान पर इतना विश्वास करता है कि उसी के भरोसे के बल पर वह अमृतसर टिका रहता है। वह लाहौर नहीं जाता। रक्खा पहलवान द्वारा बुलाए जाने पर उसका खाना छोड़कर रक्खा से मिलने आना दोनों के संबंधों में विश्वास का ही द्योतक है। इन संबंधों के विश्वास का खून तो रक्खे पहलवान ने ही किया। खैर चाहे जो हो। इस कहानी को पढ़ने से यही लगता है–

'भले ही रोज दिवाली मना के खुश हो लो
अंधेरा वास्तव में आदमी के भीतर है।'

संदर्भ

[1] हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा– ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ. 81 प्रकाशन हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2006

[2] स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानियां – संपादन कमलेश्वर, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, पहला संस्करण– 2004, आवृत्ति –2005

[3] हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. 172

[4] स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानियां संपादन कमलेश्वर, पृ. 21

[5] नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति– देवीशंकर अवस्थी, पृ. 93 राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2008

[6] हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 492, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संशोधित संस्करण 2006

[7] समकालीन भारत– बिपन चन्द्र, पृ. 105, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स– नई दिल्ली, सस्करण 2005